24

विधायी और कार्यपालिका शक्तियों का वितरण

संघ की प्रकृति।

हमारे संविधान द्वारा स्थापित परिसंघ प्रणाली की प्रकृति को पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है (अध्याय 5)। इसके आवश्यक लक्षणों पर पुनः दृष्टिपात करने पर निम्नलिखित बातें सम्मुख आती हैं :

इसमें ऐकिकता की ओर झुकाव बहुत अधिक है तथा पारंपरिक परिसंघीय स्कीम के बहुत से अपवाद है। फिर हमारे देश के शासन के आधारभूत ढांचे के रूप में संविधान ने परिसंघीय प्रणाली अपनाई है। 2000 के अंत तक संघ में 28 राज्य[1] हैं और संघ तथा राज्य दोनों ही संविधान से प्राधिकार प्राप्त करते हैं। संविधान ने विधायी, कार्यपालिका और वित्तीय इन सभी शक्तियों का विभाजन इनके बीच किया है [जैसा हम पहले बता चुके हैं (अध्याय 22) न्यायिक शक्तियों का विभाजन नहीं किया गया है। संघ और राज्य दोनों के लिए एक ही न्यायपालिका हैं]। परिणाम यह है कि राज्य संघ के प्रत्यायोजिती नहीं है। संघ के पास वहुत से अभिकरण और युक्तियां ऐसी हैं जिनके द्वारा अनेकों विषयों में राज्य पर नियंत्रण किया जा सकता है। इन अपवादों के अधीन रहते हुए राज्य संविधान द्वारा आबंटित अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं। संघ और राज्य दोनों समान रूप से संघ द्वारा अधिरोपित मर्यादाओं के अधीन हैं। उदाहरण के लिए विधायी शक्ति का प्रयोग मूल अधिकारों द्वारा मर्यादित है।

न तो संघ विधान मंडल (संसद्) और न ही राज्य विधान मंडल विधिक अर्थ में "प्रभुत्व संपन्न" हैं। प्रत्येक की संविधान के उपबन्धों द्वारा बनाई गई परिसीमाएं हैं। ये उपबन्ध उनके बीच विधायी शक्तियों का विवरण करते हैं। इसके अतिरिक्त मूल अधिकार और कुछ अन्य विनिर्दिष्ट उपबन्ध भी कुछ विषयों में उनकी शक्ति को निर्बन्धित करते हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 276(2) (राज्य विधान मंडल की किसी वृत्ति पर कर अधिरोपित करने की शक्ति की सीमा) और अनुच्छेद 303 (व्यापार और वाणिज्य से संबंधित विधान के बारे में संसद् और राज्य विधान मंडल दोनों की शक्तियों की सीमा)। यदि इन सांविधानिक मर्यादाओं में से किसी का उल्लंघन किया जाता है तो सम्पृक्त विधान मंडल की विधि को न्यायालय अविधिमान्य घोषित कर सकता है।

विधायी शक्ति के वितरण की स्कीम।

जैसा प्रारम्भ में बताया गया है परिसंघ प्रणाली में परिसंघ और इकाइयों के बीच शक्तियों का वितरण किया जाता है। प्रत्येक देश की स्थानीय परिस्थितियों और राजनीतिक पृष्ठभूमि के अनुसार यह वितरण अलग-अलग होता है। वितरण दो प्रकार से होता है :—

(क) वह राज्यक्षेत्र जिस पर परिसंघ और इकाइयां अपनी-अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं,

(ख) वे विषय जिन पर उनकी अधिकारिता का विस्तार होता है।

हमारे संविधान में इन दोनों शीर्षों के अधीन विधायी शक्ति का वितरण इस प्रकार है:

I. विधान मंडल किसी राज्यक्षेत्र की बाबत विधान बना सकेगा। इस बारे में संभवतः राज्य विधान मंडल कुछ मर्यादा के अधीन है जिसके अधीन संसद् नहीं है। उदाहरण के लिए संघ का राज्यक्षेत्र राज्यों के बीच विभाजित है इसलिए प्रत्येक राज्य की अधिकारिता उसके अपने राज्यक्षेत्र तक ही सीमित होनी चाहिए। जब कोई राज्य का विधान मंडल अपनी शक्ति के भीतर आने वाले किसी विषय पर विधि बनाता है तो यह समझा जाना चाहिए कि वह उस राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर स्थित व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति ही निर्देश कर रहा है। राज्य का विधान मंडल संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकता है [अनुच्छेद 245(1)]। राज्य विधान मंडल अपनी राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता का किसी भी परिस्थिति में विस्तार नहीं कर सकता। इसका विस्तार तभी हो सकता है जब संसद् के अधिनियम द्वारा राज्य की सीमाएं बढ़ा दी जाएं।

संघ और राज्य के विधान मंडल का राज्यक्षेत्रीय विस्तार।

संसद् को भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति है। इसमें न केवल राज्य आते हैं बल्कि संघ राज्यक्षेत्र या ऐसा कोई क्षेत्र भी आ जाता है जो तत्समय भारत के राज्यक्षेत्र में सम्मिलित है [अनुच्छेद 246(4)]। उसे राज्यक्षेत्रातीत विधान बनाने की शक्ति भी है [अनुच्छेद 245(2)]। यह शक्ति किसी राज्य विधान मंडल को नहीं है। इसका यह अर्थ हुआ कि संसद् द्वारा बनाई गई विधियां न केवल भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर स्थित व्यक्तियों और संपत्तियों को शासित करेंगी बल्कि विश्व के किसी भाग में भी निवास करने वाली भारत की प्रजा और उनकी वहां स्थित सम्पत्ति को लागू होंगी। भारत में राज्य के विधान मंडलों द्वारा अपने राज्य की सीमाओं के बाहर व्यक्तियों या संपत्ति को प्रभावित करने का शक्ति का दावा नहीं किया जा सकता।

संसद् की व्यापक राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता, संविधान के कुछ विशेष उपबंधों के अधीन है,—

संसद् की राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता की परिसीमाएं।

(i) अंदमान और निकोबार द्वीप और लक्षद्वीप जैसे संघ राज्यक्षेत्रों के बारे में राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए विनियमों का वही बल होगा जो संसद् के अधिनियमों का होता है और ऐसे विनियम ऐसे राज्यक्षेत्र के संबंध में संसद् द्वारा बनाई गई विधि को निरसित या संशोधित कर सकते हैं [अनुच्छेद 240(2)]।[2]

(ii) राज्यपाल संसद् के किसी अधिनियम को किसी अनुसूचित क्षेत्र में लागू होने से अधिसूचना द्वारा वर्जित कर सकता है या उपांतरित कर सकता है [पांचवीं अनुसूची का पैरा 5]।[2]

(iii) असम का राज्यपाल, लोक अधिसूचना द्वारा यह निदेश दे सकता है कि संसद् का कोई अधिनियम असम राज्य के किसी स्वशासी जिले को या किसी स्वशासी क्षेत्र को लागू नहीं होगा या ऐसे जिले या क्षेत्र या उसके किसी भाग को ऐसे अपवादों या उपान्तरणों के अधीन लागू होगा जो वह अधिसूचना में विनिर्दिष्ट करे [छठी अनुसूची का पैरा 12(1)(ख)]।[3] मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जिले या स्वशासी क्षेत्र के बारे में इसी प्रकार का अधिकार छठी अनुसूची के पैरा 12क, 12कक और 12ख द्वारा राष्ट्रपति को दिया गया है।

यह स्पष्ट है कि पूर्वगामी विशेष उपबंध विनिर्दिष्ट क्षेत्रों के पिछड़ेपन को देखते हुए अन्तःस्थापित किए गए हैं क्योंकि साधारण विधियों को वहां लागू करने से कठिनाई हो सकती है या उसके कुछ दुष्परिणाम हो सकते हैं।

विधायी विषयों का वितरण।

II. विषयों के वितरण के बारे में संविधान ने भारत शासन अधिनियम, 1935 से संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का तीन प्रकार से वितरण किया है [अनुच्छेद 246]। संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया में शक्तियों का एक ही प्रगणन किया गया है—केवल परिसंघ विधान मंडल की शक्तियां गिनाई गई हैं। कनाडा में दोहरा प्रगणन है। भारत शासन अधिनियम, 1935 में तीन प्रगणन थे अर्थात् परिसंघीय, प्रान्तीय और समवर्ती। संविधान ने 1935 के अधिनियम से यह स्कीम ले ली और विधान के सभी संभावित विषयों को संविधान की अनुसूची 7 में तीन विधायी सूचियों में विभाजित कर दिया (देखिए सारणी 19)।[4]

सूची I या संघ सूची में (दिसम्बर 2000 तक) 99 मद या विषय ऐसे हैं जिन पर संघ को विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। इसके अन्तर्गत प्रतिरक्षा, विदेश कार्य, बैंककारी, बीमा, करेंसी और सिक्के, संघ के शुल्क और कर हैं।

सूची II या राज्य सूची में 61 मदें या प्रविष्टियां हैं जिन पर विधान बनाने की अनन्य शक्ति राज्य विधान मंडल को है। इनमें हैं लोक व्यवस्था और पुलिस, स्थानीय शासन, लोक स्वास्थ्य, कृषि, वन, मात्स्यिकी, राज्य के कर और शुल्क।

सूची III संघ और राज्य के विधान मंडल को 52 मदों पर समवर्ती शक्ति प्रदान करती है जैसे दाण्डिक विधि और प्रक्रिया, सिविल प्रक्रिया, विवाह, संविदा, अपकृत्य, न्यास, श्रम कल्याण, आर्थिक और सामाजिक योजना तथा शिक्षा।

तीनों सूचियों में परस्पर व्याप्ति होने की दशा में संघ विधान मंडल को उसी प्रकार प्रधानता दी गई है जैसे भारत शासन अधिनियम, 1935 में थी। राज्य विधान मंडल की राज्य सूची में प्रगणित विषयों पर विधान बनाने की शक्ति संसद् की संघ सूची और समवर्ती सूचियों में प्रगणित विषयों की बाबत विधान बनाने की शक्ति के अधीन है। राज्य की सूची की प्रविष्टियों का निर्वचन तदनुसार किया जाएगा।

समवर्ती क्षेत्र में एक ही विषय पर संघ और राज्य की विधि में विरोध होने की दशा में ही संघ की विधि अभिभावी होती है। यदि राज्य की विधि को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर अनुमति मिल गई है तो वह विधि उस राज्य में अभिभावी होगी। किंतु संसद् पश्चात्वर्ती विधान द्वारा राज्य विधि का अध्यारोहण कर सकती है [अनुच्छेद 254(2)]।[5]

अवशिष्ट शक्तियां।

हमारे संविधान में अवशिष्ट शक्तियों के निहित करने के बारे में कनाडा के पूर्व दृष्टांत का अनुसरण किया गया है। हमारे यहां अवशिष्ट शक्ति संघ को दी गई है राज्यों को नहीं (अमरीका और आस्ट्रेलिया में यह शक्ति राज्यों को है)। इस विषय में संविधान और भारत शासन अधिनियम, 1935 में अन्तर है। उस अधिनियम में अवशिष्ट शक्तियां न तो परिसंघ में निहित थीं और न ही राज्य विधान मंडल में किंतु वे गर्वनर जनरल के हाथों में थी। संविधान अवशिष्ट शक्ति अर्थात् ऐसे विषय पर जो सूचियों में से किसी में प्रगणित नहीं है, विधि बनाने की शक्ति संघ विधान मंडल में निहित करता है [अनुच्छेद 248]।[6] कोई विशिष्ट विषय अवशिष्ट शक्ति के अधीन आता है या नहीं इस बात का अवधारण न्यायालय करेंगे।

यह ध्यान देने योग्य है कि ये तीनों सूचियां विधायन के सभी संभव विषयों को निःशेषकारी रूप से प्रगणित करती हैं। न्यायालय इन प्रगणित विषयों की परिधि का निर्वचन उदारता से करते हैं परिणामतः अवशिष्ट शक्ति के लागू किए जाने का क्षेत्र संकीर्ण हो जाता है।[7]

विभिन्न परिस्थितियों में संघ की विधायी शक्ति का विस्तार।

ऊपर जो कहा गया है वह विधायी शक्तियों के प्रसामान्य वितरण का वर्णन है। कुछ आपवादिक परिस्थितियां हैं जिनमें वितरण की उपरोक्त प्रणाली निलम्बित हो जाती है और संघ की संसद् की शक्ति राज्य के विषयों पर छा जाती है। ये आपवादिक और असाधारण परिस्थितियां निम्नलिखित हैं—

(क) *राष्ट्रीय हित*—यदि राज्य सभा उपस्थित और मत देने वाले दो-तिहाई सदस्यों के संकल्प से यह घोषित करती है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि संसद् को राज्य सूची के विषयों पर विधान बनाने की शक्ति हो तो एक अस्थायी अवधि के लिए संसद् को राज्य सूची में सम्मिलित विषयों की बाबत विधि बनाने की शक्ति होगी। ऐसे प्रत्येक संकल्प से प्रश्नगत विधि को एक वर्ष की अवधि मिलती रहेगी।

संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि जिसे संसद् ऐसे संकल्प के पारित होने के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के पश्चात् छह मास की अवधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के सिवाय प्रभावी नहीं रहेगी जिन्हें उक्त अवधि की समाप्ति से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है [अनुच्छेद 249]। राज्य सभा के संकल्प को एक बार में एक वर्ष की अवधि के लिए नवीकृत किया जा सकता है।

(ख) *आपात की उद्घोषणा के अधीन*—जब राष्ट्रपति द्वारा आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है तब संसद् को राज्य के विषयों की बाबत विधान बनाने की ऐसी ही शक्ति होगी।

संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि जिसे संसद् आपात की उद्घोषणा के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होती, उद्घोषणा के प्रर्वतन में न रहने के पश्चात् छह मास की अवधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के सिवाय प्रभावी नहीं रहेगी जिन्हें उक्त अवधि की समाप्ति से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है [अनुच्छेद 250]।

(ग) *राज्यों के बीच करार द्वारा*—यदि दो या अधिक राज्यों के विधान मंडल यह संकल्प करते हैं कि संसद् के लिए उन राज्यों के सम्बन्ध में राज्य सूची में सम्मिलित किसी विषय की बाबत विधि बनाना विधिपूर्ण होगा तो संसद् को ऐसे राज्यों के बारे में ऐसी शक्ति होगी। कोई अन्य राज्य, राज्य के विधान मंडल में इस निमित्त पारित संकल्प द्वारा संघ के ऐसे विधान को अपने लिए अंगीकार कर सकेगा। संक्षेप में यह राज्यों के विधान मंडलों की सहमति से संसद् की अधिकारिता का विस्तार है [अनुच्छेद 252]।[8]

जैसे संसद् को कृषि भूमि की बाबत संपदा-शुल्क अधिरोपित करने की क्षमता नहीं है, किंतु संसद् ने संपदा-शुल्क अधिनियम, 1953 में कुछ राज्यों में स्थित कृषि भूमियों को सम्मिलित कर लिया था। यह अनुच्छेद 252 के अधीन ऐसे राज्यों के विधान मंडलों द्वारा पारित संकल्पों के आधार पर किया गया था जिनमें संसद् को ऐसी शक्ति प्रदान की गई थी।

यह अधिनियम अब निरसित हो गया है। इस प्रकार के विधान के अन्य उदाहरण हैं,— पुरस्कार प्रतियोगिता अधिनियम, 1955; नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976; जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974।

(घ) *संधियों को क्रियान्वित करने के लिए*—संसद् को किसी संधि, अंतरराष्ट्रीय करार या अभिसमय के प्रयोजन के लिए किसी विषय की बाबत विधान बनाने की शक्ति है। दूसरे शब्दों में अन्तरराष्ट्रीय बाध्यताओं को क्रियान्वित करने के लिए विधान बनाने में संसद् के मार्ग में शक्तियों का प्रसामान्य वितरण बाधा उत्पन्न नहीं करेगा चाहे ऐसा विधान राज्य के विषय के संबंध में ही क्यों न हो [अनुच्छेद 253]।

ऐसे विधान के उदाहरण हैं: जिनेवा कन्वेंशन अधिनियम, 1960; यान-हरण निवारण अधिनियम, 1982; संयुक्त राष्ट्र (विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां) अधिनियम, 1947।

(ङ) *राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा के अधीन*—जहां राष्ट्रपति द्वारा ऐसी उद्घोषणा की जाती है वहां राष्ट्रपति यह घोषित कर सकता है कि राज्य के विधान मंडल की शक्तियों का प्रयोग संसद् द्वारा या संसद् के प्राधिकार के अधीन किया जाएगा [अनुच्छेद 356(1)(ख)]।

विधायी सूचियों का निर्वचन।

न्यायालयों के लिए इन तीन विधायी सूचियों की 200 से अधिक प्रविष्टियों का निर्वचन कोई सरल काम नहीं है। न्यायालयों को विभिन्न प्रविष्टियों में समन्वय करने के लिए अनेक न्यायिक सिद्धांतों को लागू करना पड़ता है। उन सब पर विचार करना इस पुस्तक की परिधि के बाहर है।[9] इतना कहना पर्याप्त होगा कि,—

(क) प्रत्येक प्रविष्टि को उसके शब्दों को ध्यान में रखते हुए और किसी अन्य प्रविष्टि को व्यर्थ न करते हुए अधिक से अधिक व्यापक महत्व दिया जाता है।[10]

(ख) यह अवधारित करने के लिए कि कोई विशिष्ट अधिनियमिति किस प्रविष्टि में आती है उस अधिनियमिति का सार और त्तव जाना चाहिए। उस पर लगाए गए विधायी नामपट्ट पर ध्यान नहीं दिया जाता।[11] यदि अधिनियमिति सारवान् रूप से ऐसी प्रविष्टि के अधीन आती है जिस पर विधान मंडल की अधिकारिता है और आनुषंगिक रूप से ऐसी प्रविष्टि में वह प्रवेश करती है जिसके बारे में वह सक्षम नहीं है तो इससे विधि अविधिमान्य नहीं हो जाएगी।[10]

(ग) दूसरी ओर, जब विधान मंडल को किसी विषय के बारे में विधान बनाने की शक्ति नहीं है तो न्यायालय ऐसे विधान मंडल को अपनी शक्ति के बाहर जाकर या किसी अन्य विधि की शक्ति पर अधिक्रमण करके कोई अन्य युक्ति या "आभासी विधान" बनाकर ऐसा करने की अनुमति नहीं दे सकता।[12]

(घ) विधान मंडल ने विधायी शक्ति की सांविधानिक सीमाओं का उल्लंघन किया है या नहीं यह अवधारित करने के लिए विधान मंडल के उद्देश्य पर विचार करना असंगत है।[12]

कार्यपालिका शक्ति का वितरण।

संघ और राज्य के बीच कार्यपालिका शक्ति का वितरण, विधायी शक्तियों के वितरण की अपेक्षा अधिक जटिल हैं।

I. साधारणतया यह वितरण विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम का अनुसरण करता है। परिणामस्वरूप राज्य की कार्यपालिका शक्ति मुख्यतया

विधायी शक्ति के समान विस्तारवान है, इसका यह अर्थ हुआ कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उसके अपने राज्यक्षेत्र पर होगा और ऐसे विषयों की बाबत होगा जिन पर उसकी विधायी क्षमता है [अनुच्छेद 162]। इसके विपरीत संघ की निम्नलिखित विषयों पर अनन्य कार्यपालिका शक्ति होगी,—(क) उन विषयों पर जिनकी बाबत संसद् को विधि बनाने की अनन्य शक्ति है (अर्थात् 7वीं अनुसूची की सूची 1 के विषय) और (ख) किसी संधि या करार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग [अनुच्छेद 73]। दूसरी ओर राज्य को सूची 2 में सम्मिलित सभी विषयों पर अनन्य विधायी शक्तियां होंगी [अनुच्छेद 162]।

II. समवर्ती क्षेत्र में वितरण के सम्बन्ध में कुछ नवीनता है। समवर्ती विधायी सूची (अर्थात् सूची 3) में सम्मिलित विधायी शक्ति की बाबत, सामान्यतया कार्यपालिका शक्ति राज्यों को होगी किंतु संविधान या संसद् की किसी विधि के संघ को अभिव्यक्त रूप से ऐसे कृत्य प्रदत्त करने वाले उपबन्धों के अधीन रहते हुए ही राज्यों को शक्ति मिलेगी। भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन केन्द्र को प्रान्तीय कार्यपालिका को समवर्ती विषय से सम्बन्धित केन्द्रीय विधि के क्रियान्वयन के लिए निदेश देने की शक्ति थी किंतु निदेश देने की यह शक्ति निष्प्रभावी साबित हुई। इसलिए संविधान में यह उपबंध किया गया कि संघ यदि ठीक समझे तो समवर्ती विषयों से सम्बन्धित संघ की विधि का प्रशासन स्वयं कर सकेगा।

परिणामस्वरूप समवर्ती विषयों से संबंधित कार्यपालिका शक्ति राज्यों के पास है। इसके दो अपवाद हैं,—

(क) जब ऐसे विषय से संबंधित संघ की विधि कोई कार्यपालिका कृत्य को विनिर्दिष्ट रूप से संघ में निहित करती है। उदाहरणार्थ भूमि अर्जन अधिनियम, 1894, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 [अनुच्छेद 73(1) का परन्तुक]। इन संघ विधियों में विनिर्दिष्ट कृत्यों की वावत कार्यपालिका शक्ति संघ को होगी राज्यों को नहीं। अन्य विषयों की बाबत कार्यपालिका शक्ति राज्यों में ही होगी।

(ख) जहां संविधान के उपबंध कोई कार्यपालिका कृत्य संघ को सौंपते हैं, जैसे,

(i) किसी संधि या अंतरराष्ट्रीय करार को क्रियान्वित करने की कार्यपालिका की शक्ति अनन्यतः संघ को है चाहे वह विषय संघ, राज्य या समवर्ती सूची में हो [अनुच्छेद 73(1)(ख)]।

(ii) संघ को अपनी कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कुछ विषयों में राज्य सरकार को निदेश देने की शक्ति है। ये विषय हैं—

(अ) *प्रसामान्य समय में :*

(क) उस राज्य में लागू संघ विधि और विद्यमान विधियों के सम्यक् अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए [अनुच्छेद 256]।

(ख) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करता है [अनुच्छेद 257(1)]।

(ग) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार साधनों का राज्य द्वारा निर्माण किया जाएगा और उन्हें बनाए रखा जाएगा [अनुच्छेद 257(2)]।

(घ) राज्य के भीतर रेलों का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए [अनुच्छेद 257(3)]।

(ङ) निदेशों में विनिर्दिष्ट ऐसी स्कीमों को बनाने और निष्पादन के लिए जो राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवश्यक समझे [अनुच्छेद 339(2)]।

(च) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं सुनिश्चित करने के लिए [अनुच्छेद 350क(2)]।

(छ) हिन्दी भाषा का विकास सुनिश्चित करने के लिए [अनुच्छेद 351]।

(ज) यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई जाए [अनुच्छेद 355]।

(आ) आपात में :

(क) आपात की उद्घोषणा के दौरान संघ की शक्ति का विस्तार यह निदेश देने के लिए भी किया जाता है कि किस प्रकार किसी विषय के संबंध में राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किया जाएगा [अनुच्छेद 353(क)] (जिससे राज्य सरकार को निलम्बित किए बिना पूर्णतः संघ के नियंत्रण में ले आया जाता है)।

(ख) राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा पर राष्ट्रपति राज्य की समस्त या किन्हीं कार्यपालिका शक्तियों को अपने हाथ में ले सकेगा [अनुच्छेद 356(1)]।

(इ) वित्तीय आपात की उद्घोषणा के दौरान :

(क) वित्तीय औचित्य संबंधी ऐसे सिद्धांतों का पालन करने के लिए जो निदेशों के अनुसार विनिर्दिष्ट किया जाए [अनुच्छेद 360(3)]।

(ख) राज्य के कार्यकलाप के सम्बन्ध में सेवा करने वाले सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों के, जिनके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, वेतनों और भत्तों में कमी करने के लिए [अनुच्छेद 360(4)(ख)]।

(ग) धन विधेयकों या अन्य ऐसे विधेयकों को राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करने की अपेक्षा करना [अनुच्छेद 360(4)]।

III. विधायी शक्तियों के बारे में संघ [अनुच्छेद 252 को छोड़कर] और राज्य को पारस्परिक सहमति से एक दूसरे की अनन्य अधिकारिता का अतिक्रमण करने की क्षमता नहीं है किंतु यह कार्यपालिका शक्ति के बारे में सम्भव हो सकता है, जैसे किसी राज्य की सरकार की सहमति से संघ किसी विषय से सम्बन्धित अपने कार्यपालिका कृत्य ऐसे राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को सौंप सकता है [अनुच्छेद 258(1)]। इसके विपरीत संघ सरकार की सहमति से, राज्य सरकार उसे अपने कार्यपालिका कृत्य सौंप सकती है [अनुच्छेद 258क]।

IV. अनुच्छेद 258(2) के अधीन संसद् द्वारा संघ के विषय में बनाई गई विधि केन्द्रीय सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत कर सकती है कि वह सरकार अपने कार्य या कृत्य राज्य सरकार या उसके अधिकारियों को प्रत्यायोजित कर दे (ऐसी राज्य सरकार की सम्मति लिए बिना)।

निर्देश

1. मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों के राज्य क्षेत्र से कुछ राज्य क्षेत्र निकाल सन् 2000 में क्रमशः छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और झारखण्ड राज्य बना देने से राज्यों की संख्या 28 हो गई।
2. देखिए डा. बसु का *कांस्टिट्यूशनल ला आफ इंडिया* (6ठा संस्करण, 1991), पृष्ठ 265, 458।
3. वही, पृष्ठ 467।
4. जैसा पहले कहा गया है यह वितरण संघ राज्यक्षेत्रों को लागू नहीं होता। इनके बारे में संसद् किसी भी विषय में विधान बनाने के लिए सक्षम है। इसमें वे विषय भी आते हैं जो राज्य सूची में प्रगणित हैं।

25

वित्तीय शक्तियों का वितरण

वित्तीय संसाधनों के वितरण की आवश्यकता।

कोई भी परिसंघ प्रणाली तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि संघ और राज्य दोनों के पास ऐसे पर्याप्त वित्तीय संसाधन न हों जिनसे वे संविधान के अधीन अपने-अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे संविधान ने विस्तृत उपबन्ध बनाए हैं। इनमें मुख्यतः भारत शासन अधिनियम, 1935 की करों के और कर से भिन्न राजस्व के वितरण के संबंध में तथा उधार लेने की शक्ति के बारे में उपबन्धों का अनुसरण किया गया है। इसकी अनुपूर्ति में संघ द्वारा राज्य को सहायता अनुदान के उपबन्ध रखे गए हैं।

इन विस्तृत उपबन्धों पर, जो देश के वित्तीय संसाधनों के वितरण के लिए एक जटिल व्यवस्था बनाते हैं, विचार करने के पहले इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि इस जटिल तंत्र का उद्देश्य परिसंघ की दोनों इकाइयों के बीच वित्तीय संसाधनों का साम्यापूर्ण वितरण करना है। इसका उद्देश्य सामान्य परिसंघीय प्रणाली के अधीन दो इकाइयों में संसाधनों का जलरोधी विभाजन करना नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने इस व्यवस्था के लिए इन शब्दों में एक सुंदर भूमिका दी है।[1]

> *"संघ को राजस्व के जो स्रोत आबंटित किए गए हैं वे समग्र रूप से संघ के प्रयोजनों के लिए नहीं हैं किंतु उपर्युक्त अनुच्छेदों में प्रकल्पित संसदीय विधान में उल्लिखित सिद्धांतों के अनुसार उनका वितरण किया जाना है। संघ द्वारा उद्गृहीत सभी कर और शुल्क भारत की संचित निधि के भाग नहीं होते। इनमें से बहुत से कर और शुल्क राज्यों में वितरित किए जाते हैं और राज्यों की संचित निधि के भाग होते हैं। उन करों और शुल्कों को भी जो भारत की संचित निधि गठित करते हैं आवश्यकतानुसार राज्य के राजस्व की अनुपूर्ति करने के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा सकता है। पूर्वोक्त करों और शुल्कों का राज्य में वितरण करने का प्रश्न और उनको शासित करने वाले सिद्धांत तथा सहायता अनुदान को शासित करने वाले तत्व . . . ऐसे विषय हैं जिनका विनिश्चय एक उच्च शक्तिसम्पन्न वित्त आयोग द्वारा किया जाता है। इस निकाय को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वह वस्तुनिष्ठ रीति से इन विषयों का अवधारण करे ... संविधान निर्माताओं ने यह अनुभव किया था कि राज्यों को आबंटित राजस्व के ये स्रोत अनेक प्रयोजनों के लिए, हो सकता है पर्याप्त न हों और भारत सरकार को उनके कल्याणकारी कार्यों में साहाय्यिकी देना आवश्यक होगा . . .। राज्यों के वित्तीय स्रोतों की सीमाओं को देखते हुए और कल्याणकारी राज्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संविधान ने . . . संसद् को यह शक्ति दी है कि वह अपने राजस्व का एक हिस्सा . . . राज्यों के फायदे के लिए ही अलग कर दे। यह पूर्वकथित अनुपात में नहीं होगा किंतु आवश्यकता के अनुसार होगा . . .। संघ सरकार के संसाधन अनन्य रूप से संघ के क्रियाकलापों के फायदे के लिए नहीं हैं . . . दूसरे शब्दों में संघ और राज्य मिलकर एक इकाई बनाते हैं जो भारत के समस्त राज्यक्षेत्र के संसाधनों का उपयोग करती है।"*

कर राजस्व के वितरण के सिद्धांत।

संविधान, कर उद्ग्रहण करने की विधायी शक्ति और इस प्रकार उद्गृहीत कर के आगम का विनियोग करने की शक्तियों में विभेद करता है। भारत में इन दो बातों के संबंध में विधान मंडल की शक्तियां एक सी नहीं हैं।

कर उद्ग्रहण करने की विधायी शक्तियों का वितरण।

(अ) कर अधिरोपित करने के लिए विधि बनाने की विधायी शक्ति संघ और राज्यों के बीच अनुसूची 7 की संघ और राज्य की विधायी सूचियों में विनिर्दिष्ट प्रविष्टियों के माध्यम से विभाजित की गई है (देखिये सारणी 19)। उदाहरणार्थ राज्य विधान मंडल को कृषि भूमि की बाबत संपदा-शुल्क उद्ग्रहण करने की शक्ति है (सूची 2 की प्रविष्टि 48), कृषिकेतर भूमि की बाबत संपदा-शुल्क उद्ग्रहण करने की शक्ति संसद् की है (सूची 1 की प्रविष्टि 87)। इसी प्रकार राज्य का विधान मंडल कृषि आय पर कर उद्ग्रहण करने के लिए सक्षम है (सूची 2 की प्रविष्टि 46), किंतु संसद् को कृषि आय से भिन्न सभी आय पर आय-कर उद्ग्रहण करने की शक्ति है (सूची 1 की प्रविष्टि 82)।

कराधान के बारे में (साधारण विधान के बारे में भी) अवशिष्ट शक्ति संसद् को है (सूची 1 की प्रविष्टि 97)। दान-कर और व्यय-कर के संबंध में यह अभिनिर्धारित हुआ है कि उनके लिए प्राधिकार अवशिष्ट शक्ति से ही प्राप्त होता है। कर संबंधी विधान के विषय में कोई समवर्ती क्षेत्र नहीं है।

इस विषय को समाप्त करने के पहले यह बताना उचित होगा कि यद्यपि राज्य विधान मंडल को राज्य की विधायी सूची में प्रगणित कर उद्ग्रहण करने की शक्ति है फिर भी कुछ करों की दशा में यह शक्ति संविधान के अधिष्ठायी उपबन्धों द्वारा अधिरोपित परिसीमाओं के अधीन है। जैसे,—

(क) वृत्ति-कर।

अनुसूची 7 की सूची 2 की प्रविष्टि 60 राज्य विधान मंडल को वृत्ति, व्यापार, आजीविका या नियोजन पर कर लगाने के लिए प्राधिकृत करती है,—राज्य या राज्य में किसी अन्य प्राधिकारी को किसी एक व्यक्ति के बारे में ऐसे कर के रूप में संदेय राशि 2,500 रुपए[2] प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होगी [अनुच्छेद 276(2)]।

(ख) विक्रय-कर।

(ख) "समाचार पत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर कर" अधिरोपित करने की शक्ति राज्य को है (सूची 2, प्रविष्टि 54) किंतु आयात और निर्यात पर कर (सूची 1, प्रविष्टि 83) और अन्तरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान विक्रय पर कर (सूची 1 की प्रविष्टि 92क) अनन्य रूप से संघ के विषय हैं। अनुच्छेद 286 यह सुनिश्चित करने के लिए है कि राज्य द्वारा अधिरोपित विक्रय-कर अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य या आयात और निर्यात में हस्तक्षेप नहीं करते हैं क्योंकि वे राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न हैं इसलिए इन्हें राज्यों की अधिकारिता से बाहर रखा जाना चाहिए। इसलिए अनुच्छेद 286 ने विक्रय-कर विधान बनाने की राज्यों की शक्तियों पर कुछ मर्यादाएं अधिरोपित की हैं।

1. (क) ऐसे कर या विक्रय पर कोई कर अधिरोपित नहीं किया जाएगा जो राज्य के बाहर होता है।

(ख) माल के भारत में आयात या भारत से बाहर निर्यात के दौरान होने वाले क्रय या विक्रय पर कोई कर अधिरोपित नहीं किया जाएगा।[3]

2. अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के संबंध में दो मर्यादाएं हैं,—

(i) अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य[4] के दौरान होने वाले विक्रय पर कर लगाने की शक्ति अनन्य रूप से संसद् में है (सूची 1 की प्रविष्टि 92क)।

(ii) यद्यपि कोई विक्रय अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के दौरान नहीं होता है तो भी राज्य का कराधान संसद् द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों और शर्तों के अधीन होगा यदि विक्रय ऐसे माल के संबंध में है जिसे संसद् ने अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य के लिए विशेष महत्व का घोषित किया है। इस शर्त के अनुसरण में संसद् ने चीनी, तम्बाकू, कपास, रेशम और ऊनी फेब्रिक को अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य में विशेष महत्व का माल घोषित किया है। इसके लिए अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क (विशेष महत्व का माल) अधिनियम, 1957 (धारा 7) अधिनियमित किया गया और ऐसे माल के विक्रय पर कर उद्ग्रहण करने के लिए राज्यों पर विशेष निर्बन्धन लगाए गए।

(ग) विद्युत के उपभोग या विक्रय पर कर।

(ग) वहां तक के सिवाय जहां तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे किसी राज्य की कोई विधि (किसी सरकार द्वारा या अन्य व्यक्तियों द्वारा उत्पादित) विद्युत के उपभोग या विक्रय पर जिसका,—

(i) भारत सरकार द्वारा उपभोग किया जाता है या भारत सरकार द्वारा उपभोग किए जाने के लिए उस सरकार को विक्रय किया जाता है, या

(ii) किसी रेल के निर्माण, बनाए रखने या चलाने में भारत सरकार या किसी रेल कंपनी द्वारा, जो उस रेल को चलाती है, उपभोग किया जाता है अथवा किसी रेल के निर्माण, बनाए रखने या चलाने में उपभोग के लिए उस सरकार या किसी ऐसी रेल कंपनी को विक्रय किया जाता है कोई कर अधिरोपित नहीं करेगी या कर का अधिरोपण प्राधिकृत नहीं करेगी [अनुच्छेद 287]।

(घ) संघ और राज्य की संपत्तियों पर परस्पर कराधान से छूट।

(घ) वहां तक के सिवाय, जहां तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे, किसी राज्य द्वारा या राज्य के भीतर किसी प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित सभी करों से संघ की सम्पत्ति को छूट होगी [अनुच्छेद 285(1)]।

इसके विपरीत, राज्य की सम्पत्ति और आय को संघ के कराधान से छूट होगी [अनुच्छेद 289(1)]। किंतु इसके बारे में एक अपवाद है। यदि कोई राज्य कोई व्यापार या कारबार करता है जो ऐसा कारबार नहीं है जिसे संसद् ने सरकार के सामान्य कामकाज का अनुषंगी व्यापार या कारबार घोषित किया है तो उसे संघ के कराधान से छूट नहीं होगी [अनुच्छेद 289(2)]। यह उन्मुक्ति संपत्ति पर कर के सम्बन्ध में है। अतएव राज्य की सम्पत्ति को सीमा-शुल्क से छूट नहीं है।[1]

कर आगमों का वितरण।

(*आ*) यद्यपि किसी विधान मंडल को कराधान की विषयवस्तु की निकटता के आधार पर कर उद्ग्रहण करने की शक्ति दी गई है किंतु राज्य विधान मंडल की परिधि में आने वाले विभिन्न करों से प्राप्त रकमें राज्य के प्रयोजन के लिए, हो सकता है पर्याप्त न हों। इस स्थिति से निपटने के लिए संविधान ने कुछ विशेष उपबंध किए हैं।

(i) कुछ शुल्क संघ द्वारा उद्ग्रहणीय हैं किंतु वे राज्यों द्वारा संगृहीत किए जाते हैं और संग्रहण के पश्चात् राज्य ही उन्हें पूरी तरह से विनियोजित करते हैं।

(ii) कुछ ऐसे कर हैं जिनका उद्ग्रहण और संग्रहण संघ द्वारा किया जाता है किंतु उनके आगम संघ द्वारा उन राज्यों को समनुदेशित किए जाते हैं जिनमें वे संगृहीत किए गए थे।

(iii) कुछ ऐसे कर हैं जिनका उद्ग्रहण और संग्रहण संघ द्वारा किया जाता है किंतु जिनके आगम संघ और राज्यों के बीच वितरित किए जाते हैं।

पूर्वगामी सिद्धांतों के अनुसार संघ और राज्यों के बीच कर राजस्व का वितरण इस प्रकार होता है,—

(अ) अनन्य रूप से संघ के अधिकार :

1. सीमा-शुल्क, 2. निगम कर, 3. व्यष्टि और कंपनियों की आस्तियों के पूंजी मूल्य पर कर, 4. आय-कर पर अधिभार आदि, 5. संघ सूची के विषयों की बाबत फीस (सूची 1)।

(आ) अनन्य रूप से राज्यों के अधिकार :

1. भू-राजस्व, 2. संघ सूची में सम्मिलित दस्तावेजों को छोड़कर अन्य दस्तावेजों पर स्टांप शुल्क, 3. उत्तराधिकार शुल्क, संपदा शुल्क और कृषि भूमि पर आय-कर, 4. अंतर्देशीय जल मार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर कर, 5. भूमि और भवनों पर कर, खनिज अधिकारों पर कर, 6. जीव-जंतु और नौकाओं पर कर, सड़क-यानों पर कर, विज्ञापनों पर कर, विद्युत के उपभोग पर कर, विलास-वस्तुओं और मनोरंजन पर कर आदि, 7. स्थानीय क्षेत्रों में माल के प्रवेश पर कर, 8. विक्रय कर, 9. पथ कर, 10. राज्य सूची के विषयों की बाबत फीस, 11. वृत्ति, व्यापार आदि पर कर जो 2,500 रुपए प्रति वर्ष से अधिक नहीं होगा (सूची 2)।

(इ) संघ द्वारा उद्गृहीत शुल्क जो राज्यों द्वारा संगृहीत और विनियोजित किए जाते हैं :

विनिमय पत्रों पर स्टांप शुल्क आदि, औषधीय और प्रशासन विनिर्मितियों पर उत्पाद-शुल्क, यद्यपि ये संघ सूची में सम्मिलित हैं और संघ द्वारा उद्गृहीत किए जाते हैं, इनका संग्रहण राज्य द्वारा अपने-अपने राज्यक्षेत्र में किया जाएगा और वे उन राज्यों की निधि के भाग होंगे जो संग्रहण करते हैं [अनुच्छेद 268]।

(ई) संघ द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत कर जो राज्य को समनुदेशित किए जाते हैं :

(क) कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क, (ख) कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के संबंध में संपदा-शुल्क, (ग) रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा ले जाएं जाने वाले माल या यात्रियों पर सीमा-कर, (घ) रेल भाड़ों और माल भाड़ों पर कर, (ङ) स्टाक एक्सचेंजों और वायदा बाजारों के संव्यवहारों पर स्टांप शुल्क से भिन्न कर, (च) समाचारपत्रों के क्रय या विक्रय पर और उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर, (छ) समाचारपत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर उस दशा में कर जिसमें ऐसा क्रय या विक्रय अंतरराज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है। (ज) माल के अंतरराज्यिक पारेषण पर कर [अनुच्छेद 269]।

(उ) संघ द्वारा उद्गृहीत और संगृहीत तथा संघ और राज्यों के बीच वितरित किए जाने वाले कर :

कुछ कर संघ द्वारा उद्गृहीत या संगृहीत किए जाएंगे, किंतु उनके आगम निश्चित अनुपात में संघ और राज्यों के बीच वितरित किए जाएंगे जिससे वित्तीय संसाधनों का साम्यापूर्ण विभाजन हो सके। ये हैं—

(क) कृषि आय से भिन्न आय पर कर [अनुच्छेद 270]।

(ख) संघ सूची में सम्मिलित उत्पाद-शुल्क, यदि संसद् विधि द्वारा इस प्रकार उपबंध करे तो वितरित किए जाएंगे। औषधीय और प्रसाधन विनिर्मितियों पर उत्पाद-शुल्क इसके अन्तर्गत नहीं हैं [अनुच्छेद 272]।

(ऊ) संघ को कर भिन्न राजस्व से होने वाली प्राप्तियों के मुख्य स्रोत इस प्रकार हैं :—

कर भिन्न राजस्व का वितरण।

रेल, डाक और तार, प्रसारण, अफीम, करेंसी और टकसाल, केन्द्रीय सरकार के ऐसे औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रम जो संघ की अधिकारिता के अधीन आने वाले विषयों से संबंधित हैं।

केन्द्रीय विषयों से संबंधित औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रमों में से कुछ निम्नलिखित हैं:

औद्योगिक वित्त निगम, एयर इंडिया, इंडियन एयरलाइंस, वे उद्योग जिनमें भारत सरकार ने विनिधान किया है जैसे स्टील अथारिटी आफ इंडिया लिमिटेड, हिंदुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड।

(ए) इसी प्रकार राज्यों को निम्नलिखित प्राप्तियां होती हैं :

वन, सिंचाई और वाणिज्यिक उपक्रम (जैसे विद्युत, सड़क परिवहन) और औद्योगिक उपक्रम (जैसे कर्नाटक में साबुन, चंदन की लकड़ी, लोहा और इस्पात, मध्य प्रदेश में कागज, मुम्बई में दुग्ध प्रदाय, पश्चिमी बंगाल में गहरे समुद्र में मछली पकड़ना और रेशम)।

सहायता अनुदान।

केन्द्रीय करों में राज्यों को अंश देने के पश्चात् भी सभी राज्यों के संसाधन पर्याप्त हों यह आवश्यक नहीं है। संविधान ने इसलिए यह उपबन्ध किया है कि प्रत्येक वर्ष संघ ऐसे राज्यों को सहायता अनुदान देगा जिनके बारे में संसद् यह अवधारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। विशेषकर जनजाति क्षेत्रों के कल्याण के लिए अनुदान दिए जाएंगे जिसमें इस बाबत असम को दी जाने वाली सहायता भी सम्मिलित है [अनुच्छेद 275]।

वित्त आयोग का गठन और उसके कृत्य।

अनुच्छेद 270, 273, 275 और 280 एक वित्त आयोग के गठन का उपबन्ध करते हैं जो पांच वर्ष के अंतराल पर गठित किया जाएगा और राष्ट्रपति को संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के वितरण के संबंध में सिफारिशें करेगा। उदाहरण के लिए संघ और राज्यों के बीच आय-कर के शुद्ध आगम के आबंटन के बारे में और राज्यों के बीच वितरण करने की रीति के बारे में [अनुच्छेद 280]।

वित्त आयोग का गठन अनुच्छेद 280 में अधिकथित है। इसे वित्त आयोग (प्रकीर्ण उपबन्ध) अधिनियम, 1951 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। यह अधिनियम संविधान के उपबंधों की अनुपूर्ति करता है। संक्षेप में राष्ट्रपति हर पांच वर्ष के बाद आयोग गठित करेगा। इसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जिसे सार्वजनिक कार्यों के बारे में अनुभव होगा और अन्य चार सदस्य निम्नलिखित में से नियुक्त किए जाएंगे :—

(क) एक उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार नियुक्ति के लिए अर्हित है, (ख) एक व्यक्ति जिसे सरकार के वित्त और लेखाओं का विशेष ज्ञान है,

(ग) एक व्यक्ति जिसे वित्तीय विषयों और प्रशासन के बारे में व्यापक अनुभव है, (घ) एक व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान है।

आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह,—

(क) संघ और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों के जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित किए जाते हैं या किए जाएं, वितरण के बारे में राज्यों के बीच ऐसे आगमों के तत्संबंधी भाग के आबंटन के बारे में,

(ख) भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्वों में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांतों के बारे में,

(ग) राज्य में पंचायतों के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में,[5]

(घ) राज्य में नगरपालिकाओं के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए किसी राज्य की संचित निधि के संवर्धन के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में,[6]

(ङ) सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपे गए किसी अन्य विषय के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करे।

पहला वित्त आयोग।

पहला वित्त आयोग, 1951 में गठित किया गया। इसके अध्यक्ष श्री नियोगी थे। उसने 1953 में अपनी रिपोर्ट दी। सरकार ने उसकी सिफारिशें स्वीकार कीं। इन सिफारिशों में अन्य बातों के साथ-साथ ये थीं—

(क) आय कर के शुद्ध आगम का 55 प्रतिशत संघ द्वारा राज्यों को दिया जाएगा और राज्यों के बीच वह आयोग द्वारा विहित अंशों में वितरित किया जाएगा।

(ख) आयोग ने ऐसे राज्यों को जिन्हें वित्तीय सहायता की आवश्यकता है, सहायता अनुदान देने के लिए भारत सरकार के मार्गदर्शन के लिए सिद्धांत अधिकथित किए और पश्चिमी बंगाल, पंजाब, असम जैसे कुछ राज्यों को 1952 से 1957 तक पांच वर्षों के दौरान विनिर्दिष्ट राशियां देने की सिफारिश की।

दूसरा वित्त आयोग।

दूसरे वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री संतानम थे। यह 1956 में गठित किया गया। इसने 1957 में सरकार को अपनी रिपोर्ट दी और अप्रैल, 1957 से प्रारम्भ होने वाले पांच वर्षों तक इसकी सिफारिशें प्रभावी रहीं।

तीसरा वित्त आयोग।

श्री ए.के. चंदा की अध्यक्षता में तीसरा वित्त आयोग दिसम्बर, 1960 में नियुक्त किया गया। इसने अपनी रिपोर्ट 1962 में दी।

चौथा वित्त आयोग।

चौथे वित्त आयोग के अध्यक्ष सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति डा. राजमन्नार थे। इसका गठन 1964 में हुआ।

पांचवा वित्त आयोग।

श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता में पांचवां वित्त आयोग मार्च, 1968 में गठित किया गया। यह 1 अप्रैल, 1969 से प्रारम्भ होने वाली पांच वर्ष की अवधि के लिए था। इसने अपनी रिपोर्ट जुलाई, 1969 में दी और यह सिफारिश की कि आय-कर में राज्यों का अंश बढ़ाकर 75 प्रतिशत किया जाना चाहिए और संघ के उत्पाद-शुल्क में उनका अंश 20 प्रतिशत होना चाहिए।

छठा वित्त आयोग।

छठे वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री ब्रह्मानंद रेड्डी थे। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट अक्तूबर, 1973 में दी। पहली बार इस वित्त आयोग को राज्यों की पिछड़ी स्थिति के प्रश्न पर विचार करने और गैर योजना व्यय में कमी पर विचार करने के लिए कहा गया।

सातवां वित्त आयोग।

सातवां वित्त आयोग जून, 1977 में नियुक्त किया गया। यह 1979 से प्रारम्भ होने वाली पांच वर्ष की अवधि के संबंध में था। उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश श्री शेलात इसके अध्यक्ष थे। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट अक्तूबर, 1978 में प्रस्तुत की।

आठवां वित्त आयोग।

आठवां वित्त आयोग भूतपूर्व मंत्री श्री यशवंत राव चव्हाण की अध्यक्षता में 1982 में स्थापित हुआ।[7]

आठवें वित्त आयोग ने रिपोर्ट 1984 में दी किंतु राज्यों को धन देने के बारे में उसकी सिफारिशों को भारत सरकार ने इस आधार पर क्रियान्वित नहीं किया कि आयोग की रिपोर्ट देर से प्राप्त हुई है और सरकार के सामने वित्तीय कठिनाइयां है। इसके कारण राज्यों के सामने वित्तीय कठिनाई उत्पन्न हो गई और पश्चिमी बंगाल जैसे राज्यों ने इस अप्रत्याशित परिस्थिति के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। पश्चिमी बंगाल के कुछ लोगों ने यह कहा कि इस विषय को न्यायालय के समक्ष ले जाया जाएगा किंतु ऐसा नहीं किया गया। संभवतः इसका कारण यह था कि ये विषय न्यायालय द्वारा विचारणीय नहीं है। अनुच्छेद 280(3) वित्त आयोग को यह कर्तव्य सौंपता है कि वह राष्ट्रपति को सिफारिश करे। अनुच्छेद 287 द्वारा राष्ट्रपति पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष आयोग की सिफारिश रखवाए। संविधान में यह कहीं नहीं कहा गया है कि आयोग की सिफारिशें भारत सरकार पर आबद्धकर होंगी या यह कि आयोग द्वारा जिन राज्यों को धन देने की सिफारिश की गई है उन राज्यों के पक्ष में कोई विधिक अधिकार होगा। यह ठीक है कि उसे क्रियान्वित न करने से राज्यों को कठिनाई होगी जो आयोग की रिपोर्ट के आधार पर पहले से कुछ कार्य कर चुकी होंगी। इस अव्यवस्था या अन्याय का उपचार मतदान पेटी के माध्यम से ही है। वस्तुतः दिसम्बर के संसदीय चुनाव में पश्चिमी बंगाल में सत्तारूढ़ दल का संघ में सत्तारूढ़ दल के प्रति निर्वाचन में यह एक मुख्य अभियान था कि राज्य के प्रति अन्याय किया गया है जिसके पीछे राजनीतिक उद्देश्य है।

दुर्भाग्यवश पश्चिमी बंगाल के बाहर के राज्यों के अधिकांश मतदाताओं पर इस अभियान का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

नवां वित्त आयोग।

नवें वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री एन.के.पी. साल्वे थे। इसने अपनी रिपोर्ट 1988 और 89 में दी। सरकार ने इसकी सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली हैं[7]।

दसवां वित्त आयोग।

15 जून, 1992 को दसवां वित्त आयोग गठित किया गया। श्री कृष्णचंद्र पंत इसके अध्यक्ष थे। आयोग ने अपना प्रतिवेदन 26-11-1994 को प्रस्तुत कर दिया। सरकार को अभी इसे स्वीकार करना शेष है।

ग्यारहवां वित्त आयोग।

ग्यारहवां वित्त आयोग 3-7-1998 को गठित किया गया। इसने अपनी रिपोर्ट 7-7-2000 को पेश की।

करों की हिस्सेदारी में राज्यों के हितों का संरक्षण।

संघ के ऐसे करों में जो पूर्वोक्त उपबन्धों के अनुसार विभाज्य हैं राज्य के हितों का संरक्षण करने के लिए संविधान में यह उपबन्ध है [अनुच्छेद 274] कि कोई विधेयक या संशोधन जो,—

(क) ऐसे कर या शुल्क में, जिसमें राज्य हितबद्ध है कोई परिवर्तन करता है, या

(ख) जो उन सिद्धांतों को प्रभावित करता है जिनसे संविधान के पूर्वोक्त उपबन्धों के अनुसार धनराशियां वितरणीय हैं, या

(ग) संघ के प्रयोजनों के लिए ऐसे कर या शुल्क पर कोई अधिभार अधिरोपित करता है, तो वह राष्ट्रपति की सिफारिश से ही संसद् में पुरःस्थापित या प्रस्थापित किया जाएगा अन्यथा नहीं।

इन शर्तों के अधीन रहते हुए संसद्, संघ के प्रयोजनों के लिए ऐसे कर या शुल्क की दर में (अधिभार अधिरोपित करके) वृद्धि कर सकेगी [अनुच्छेद 271]।

आपात में संघ द्वारा वित्तीय नियंत्रण।

जिस प्रकार विधायी और प्रशासनिक क्षेत्र में संघ और राज्यों के प्रसामान्य संबंध विभिन्न आपात में उपांतरित हो जाते हैं उसी प्रकार वित्तीय विषय में भी होता है [अनुच्छेद 268-279]। उदाहरण के लिए,

(क) जब अनुच्छेद 352(1) के अधीन कोई आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में होती है तब राष्ट्रपति यह निदेश दे सकता है कि वह उद्घोषणा जिस वित्तीय वर्ष में समाप्त होती है उस वर्ष की अवधि तक संघ और राज्य के बीच करों के विभाजन और सहायता अनुदान से संबंधित सभी या कोई उपबंध निलम्बित रहेंगे [अनुच्छेद 354]। परिणामस्वरूप, यदि राष्ट्रपति ऐसा कोई आदेश करता है तो राज्यों के पास अपनी संकीर्ण राज्य सूची के अधीन राजस्व के संशोधन बचे रह जाएंगे। संघ से अभिदाय पाकर उसमें वृद्धि नहीं होगी।

(ख) जब राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपात की उद्घोषणा [अनुच्छेद 360(1)] की जाती है तब संघ राज्यों को यह निदेश देने के लिए सक्षम होगा कि,—

(i) वे वित्तीय औचित्य संबंधी ऐसे सिद्धांतों और अन्य रक्षोपायों का पालन करें जो निदेशों में विनिर्दिष्ट किए जाएं,

(ii) राज्य के कार्यकलाप के संबंध में सेवा करने वाले सभी व्यक्तियों के वेतन और भत्ते कम कर दिए जाएं। इसमें उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश भी सम्मिलित होंगे,

(iii) राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् सभी धन और वित्त विधेयक राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किए जाएं [अनुच्छेद 360]।

संघ और राज्य की उधार लेने की शक्ति।

संघ को भारत के राजस्व की प्रतिभूति पर भारत में या उसके बाहर उधार लेने की असीमित शक्ति है। संघ की कार्यपालिका इस शक्ति का प्रयोग ऐसी मर्यादाओं के अधीन रहते हुए करेगी जो संसद् समय-समय पर नियत करे [अनुच्छेद 292]।

राज्य की उधार लेने की शक्ति कुछ सांविधानिक परिसीमाओं के अधीन है :

(i) राज्य भारत से बाहर उधार नहीं ले सकते। भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन राज्यों को केन्द्र की सम्मति से भारत से बाहर उधार लेने की शक्ति थी। संविधान ने राज्य को यह शक्ति बिल्कुल नहीं दी है। अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार से धन उधार लेने की शक्ति केवल संघ को है।

(ii) राज्य की कार्यपालिका को अपने राज्य के राजस्व की प्रतिभूति पर निम्नलिखित शर्तों के अधीन रहते हुए भारत के राज्यक्षेत्र में उधार लेने की शक्ति है :

(क) ऐसे परिसीमाएं जो राज्य विधान मंडल अधिरोपित करे।

(ख) यदि संघ ने राज्य के किसी बकाया उधार की प्रत्याभूति दी है तो संघ सरकार की सम्मति के बिना राज्य कोई नया ऋण नहीं ले सकता।

(ग) भारत सरकार संसद् द्वारा बनाई गई विधि के अधीन स्वयं ही राज्य को उधार देने का प्रस्ताव कर सकती है। जब तक ऐसा ऋण या उसका कोई भाग बकाया रहता है तब तक भारत सरकार की सम्मति के बिना राज्य कोई नया ऋण नहीं ले सकता। भारत सरकार अपनी सम्मति देने में निर्बन्धन भी अधिरोपित कर सकती है [अनुच्छेद 293]।

राज्यों द्वारा अधिक वित्तीय शक्ति की मांग।

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले यह बताना उचित होगा कि राज्य यह मांग कर रहे हैं कि आवश्यकतानुसार संविधान का संशोधन करके उन्हें और अधिक वित्तीय शक्तियां दी जाएं। प्रधान मंत्री श्री देसाई ने इसका प्रबल विरोध किया था।[8]

इस विवाद्यक पर विचार करने के लिए दो बातें सुसंगत हैं,

(i) पाकिस्तान ने अणुबम बनाने के लिए जो कदम उठाए हैं और चीन की जो असमंजसपूर्ण स्थिति है उसके कारण प्रतिरक्षा के मामले में संतोष करके बैठना उचित नहीं होगा। अतएव संघ अपने संसाधनों को इस प्रकार शिथिल नहीं कर सकता कि देश की प्रतिरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।[9]

(ii) दूसरी ओर राज्य के कल्याणकारी क्रियाकलापों में प्राकृतिक विपदाओं के कारण अत्यधिक व्यय हो रहा है। 1950 में इसकी पूरी तरह से कल्पना नहीं की गई थी। इसलिए संविधान के वित्तीय उपबन्धों के पुनरीक्षण की आवश्यकता है।[10]

"केन्द्र-राज्य संबंधों" का विषय सरकारिया आयोग को सौंपा गया था। इस आयोग ने फरवरी, 1988 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

निर्देश

1. *काफी बोर्ड* बनाम *सी.टी.ओ.*, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 870।
2. संविधान (60वां संशोधन) अधिनियम, 1988 द्वारा वृत्ति कर की अधिकतम सीमा को 250 रुपए से बढ़ाकर 2,500 रुपए कर दिया गया है।
3. *जम्मू-कश्मीर राज्य* बनाम *कालटैक्स*, ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 1350।
4. सागर सीमा-शुल्क अधिनियम का मामला, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1760 (*1771*)
5. संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा 24-4-1993 से अंतःस्थापित।
6. संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा 1-6-1993 से अंतःस्थापित।
7. देखिए *इंडिया, 1990*, पृष्ठ 349।
8. श्रीमती गांधी की दूसरी सरकार ने भी प्रशासनिक सुधार आयोग की यह सिफारिश मानी है कि संघ और राज्यों के बीच संबंधों में परिवर्तन करने के लिए संविधान का संशोधन आवश्यक नहीं है। इसका आधार अन्य बातों के साथ-साथ यह है कि विशिष्ट राज्यों में वित्त की कमी की समय-समय पर वित्त आयोग द्वारा परीक्षा की जाती है और संघ के राजस्व से उन राज्यों को अधिक अनुदान देकर संविधान के उपबन्धों के अनुसार व्यवस्था की जाती है।
9. भारत के 1999-2000 के वार्षिक बजट और प्रतिरक्षा व्यय के लिए सारणी 1 देखिए।
10. देखिए डा. डी.डी. बसु, *कंपेरेटिव फेडरलिज्म* (प्रेंटिस-हाल आफ इंडिया, 1987)।

26

संघ और राज्यों के बीच प्रशासनिक संबंध

परिसंघ की इकाइयों के बीच समन्वय की आवश्यकता।

परिसंघीय प्रणाली में दो सरकारें होती हैं और उनके बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। परिसंघीय राज्य व्यवस्था की सफलता और उसकी शक्ति इन दोनों सरकारों के बीच सहकार्य और समन्वय पर निर्भर करती है। इस विषय पर हम दो शीर्षों के अधीन विचार करेंगे:

(क) संघ और राज्यों के बीच संबंध,

(ख) राज्यों के बीच परस्पर संबंध,

इस अध्याय में हम प्रथम पहलू पर विचार करेंगे और अंतरराज्यिक संबंधों पर इसके बाद के अध्याय में।

(अ) संघ के राज्यों पर नियंत्रण की पद्धति

इस विषय पर दो शीर्षों के अधीन विचार करना अच्छा होगा,—(i) आपात में, (ii) सामान्य काल में।

I. *आपात में*—यह हम पहले ही बता चुके हैं कि आपात में भारत के संविधान के अधीन सरकार इस प्रकार कार्य करती है मानो वह ऐकिक सरकार है। इस पहलू पर आगे अध्याय 28 में विस्तार से विचार किया जाएगा।

II. *सामान्य काल में*—सामान्य काल में भी संविधान में संघ द्वारा राज्यों पर नियंत्रण के तरीके निकाले गए हैं जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य सरकारें संघ की विधायी और कार्यपालिका नीति में हस्तक्षेप न करें और साथ ही इकाइयों में दक्षता हो और वे शक्ति-संपन्न हों क्योंकि ऐसा हुए बिना संघ का सामर्थ्य नहीं टिक सकता।

राज्यों के संबंध में ये नियंत्रण राष्ट्रपति में निहित कार्यपालिका और विधायी शक्ति से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए,

(i) राज्यपालों को नियुक्त करने और पदच्युत करने की शक्ति [अनुच्छेद 155-156], राज्य के अन्य उच्च पदधारियों को नियुक्त करने की शक्ति जैसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य [अनुच्छेद 217, 317]।

(ii) विधायी शक्तियां, उदाहरण के लिए राज्य विधान मंडल में विधान पुरःस्थापित करने के लिए पूर्व मंजूरी [अनुच्छेद 304 का परन्तुक] राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित विनिर्दिष्ट विधान को अनुमति [अनुच्छेद 31क(1) का परन्तुक 1, 31ग का परन्तुक, 288(2)], विनिर्दिष्ट विषयों के संबंध में अध्यादेश बनाने के लिए राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति से

अनुदेश लेने की अपेक्षा [अनुच्छेद 213(1) का परन्तुक] राज्यपाल द्वारा आरक्षित अन्य राज्य विधेयकों की बाबत वीटो की शक्ति [अनुच्छेद 200 का परन्तुक 1]।

पूर्वगामी अध्याय में इनकी व्याख्या हो चुकी है इसलिए इस अध्याय में हम संघ के नियंत्रण के विनिर्दिष्ट अभिकरणों तक ही अपने विचार को सीमित रखेंगे, अर्थात्,

(i) राज्य सरकार को निदेश,
(ii) संघ के कृत्यों का प्रत्यायोजन,
(iii) अखिल भारतीय सेवा,
(iv) सहायता अनुदान,
(v) अंतरराज्य परिषद्,
(vi) अंतरराज्य वाणिज्य आयोग [अनुच्छेद 307]।

राज्य सरकारों को संघ द्वारा निर्देश।

संघ द्वारा राज्यों को निर्देश देना सच्ची परिसंघीय प्रणाली के लिए अपरिचित और विरोधास्पद है। किंतु हमारे संविधान निर्माताओं ने यह विचार भारत शासन अधिनियम, 1935 से ग्रहण किया। यह हमारे देश की परिस्थितियों को देखते हुए और विशिष्ट रूप से जिन परिस्थितियों में परिसंघ बना था उनको ध्यान में रखते हुए किया था।

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि किन परिस्थितियों में और किन विषयों के संबंध में संघ द्वारा राज्य को निदेश दिया जाएगा। ऐसे अनुदेशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए संविधान ने अधिशास्ति विहित की है उन पर विचार करना शेष है।

यह ध्यान देने योग्य है कि संविधान ने पूर्वगामी शक्तियों के अधीन निकाले गए निदेशों के प्रवर्तन के लिए अधिशास्ति विहित की है। वह है अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति की उद्घोषणा। अनुच्छेद 365 में इस प्रकार उपबंध है :

निदेशों के प्रवर्तन के लिए अधिशास्ति।

"जहां इस संविधान के किसी उपबंध के अधीन संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए किन्हीं निदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में कोई राज्य असफल रहता है वहां राष्ट्रपति के लिए यह मानना विधिपूर्ण होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबंधों संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।"

और जैसे ही राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन उद्घोषणा करता है वैसे ही वह उस अनुच्छेद में विनिर्दिष्ट रूप में राज्य सरकार के कृत्यों को अपने हाथ में लेने का हकदार हो जाता है।

कृत्यों का प्रत्यायोजन।

जैसा पहले बताया जा चुका है कि राज्य सरकार की सहमति से राष्ट्रपति उस सरकार को किसी भी विषय से संबंधित संघ के कार्यपालक कृत्यों को सौंप सकता है [अनुच्छेद 258(1)]। संसद् संघ के विषय पर विधान बनाते हुए, राज्य सरकार को और उनके अधिकारियों को जहां तक वह अधिनियम उनके राज्य में लागू होता है, शक्तियों का प्रत्यायोजन कर सकती है [अनुच्छेद 258(2)]।

इसके विपरीत राज्य सरकार, भारत सरकार की सहमति से, राज्य के विषयों की बाबत उस सरकार को प्रशासनिक कृत्य प्रदान कर सकती है [अनुच्छेद 258क]।

जहां किसी भी सरकार को अपने प्रशासनिक कृत्य प्रत्यक्ष रूप से करना असुविधाजनक है वहां वह सरकार अपने कृत्य दूसरी सरकार के माध्यम से निष्पादित करा सकती है।

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि संघ और राज्यों के अधीन सेवारत व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी सेवाएं होंगी जो संघ और राज्यों के लिए सामान्य होंगी। उन्हें अखिल भारतीय सेवा कहा जाता है जिनके विद्यमान उदाहरण हैं, भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा [अनुच्छेद 312(2)]। किंतु संविधान में इनके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवा का सृजन करने को शक्ति प्रदान की गई है।[1] यदि राज्य सभा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषित करती है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संसद् विधि द्वारा, संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक भारतीय सेवाओं के लिए उपबंध कर सकेगी और ऐसी सेवा के लिए भर्ती और नियुक्त व्यक्ति की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेगी [अनुच्छेद 312(1)]।[1]

अखिल भारतीय सेवाएं।

जैसा डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट किया था, अखिल भारतीय सेवाओं के इस उपबंध के पीछे उद्देश्य यह है कि परिसंघीय प्रणाली में आपसी संबंध घनिष्ठ हों और संघ और राज्य दोनों में ही प्रशासन में अधिकाधिक दक्षता आए :

> *"सभी परिसंघीय प्रणालियों में द्वैध राज्य व्यवस्था होती है और इसके अनुसरण में सभी परिसंघों मे द्वैध सेवा होती है। सभी परिसंघों में, एक तो परिसंघीय सिविल सेवा और दूसरी राज्य सिविल सेवा होती है। भारतीय परिसंघ में द्वैध राज्य व्यवस्था है किंतु इसमें जो द्वैध सेवा होगी उसका एक अपवाद होगा। प्रत्येक देश में यह माना जाता है कि प्रशासनिक व्यवस्था के कुछ भाग ऐसे हैं जो प्रशासन के स्तर को बनाए रखने की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं ..... इसमें सेना नहीं है। प्रशासन का स्तर इन महत्वपूर्ण स्थानों पर नियुक्त किए गए सिविल सेवकों की गुणवत्ता पर निर्भर होगा ..... संविधान में यह उपबंध है कि राज्यों को अपनी सिविल सेवा बनाने के अधिकार से वंचित किए बिना एक अखिल भारतीय सेवा होगी जिसमें सामान्य अर्हताओं के आधार पर अखिल भारतीय रूप से भर्ती की जाएगी, इनके वेतनमान एक से होंगे और उनके सदस्यों को संघ में कहीं भी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जा सकेगा।"*

जैसा पहले बताया जा चुका है संसद् ऐसे राज्यों को जिन्हें वित्तीय सहायता की आवश्यकता है ऐसे अनुदान दे सकेगी, जैसा वह ठीक समझे [अनुच्छेद 275]।

सहायता अनुदान।

इन अनुदानों के माध्यम से संघ विभिन्न राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के असंतुलन को ठीक कर सकेगा। इस प्रकार का असंतुलन देश के बहु आयामी विकास के लिए उपयुक्त नहीं होता। इन्हीं अनुदानों के माध्यम से संघ राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों की कल्याणकारी स्कीमों पर नियंत्रण रखता है और उनमें समन्वय करता है।

वित्तीय सहायता के लिए राज्यों को अनुदान देने की इस साधारण शक्ति के अतिरिक्त संविधान में दो विषयों के लिए विनिर्दिष्ट अनुदान देने के लिए व्यवस्था की गई है, (क) उन विकास स्कीमों के खर्चों को पूरा करने के लिए जो किसी राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए या उस राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उठाने के लिए भारत सरकार के अनुमोदन से हाथ में लिया जाए। (ख) असम राज्य में जनजाति क्षेत्रों के विकास के लिए उस राज्य को अनुदान [अनुच्छेद 275(1) का परन्तुक 1-2]।

राष्ट्रपति को अंतरराज्य परिषद् स्थापित करने की शक्ति दी गई है। यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिषद् की स्थापना से लोकहित की सिद्धि होगी तो वह उसकी स्थापना कर सकेगा। राष्ट्रपति को परिषद् द्वारा किए जाने वाले कृत्यों को परिनिश्चित करने की शक्ति दी गई है किंतु संविधान में भी तीन कर्तव्य बताए गए हैं जो परिषद् को सौंपे जा सकते हैं। इनमें से एक है—

अंतरराज्य परिषद्।

"राज्यों के बीच जो विवाद उत्पन्न हो गए हों उनकी जांच करने और उन पर सलाह देने का कार्य।"

परिषद् के अन्य कृत्य होंगे—कुछ या सभी राज्यों के अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के सामान्य हित से संबंधित विषयों का अन्वेषण और उन पर विचार विमर्श, उदाहरणार्थ कृषि, वन, लोक स्वास्थ्य आदि के विषय में अनुसंधान और ऐसे विषयों से संबंधित नीति और कार्य के समन्वय की सिफारिश करना।

इस शक्ति के प्रयोग में राष्ट्रपति ने एक केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद,[2] एक केन्द्रीय स्थानीय स्वायत्त शासन[3] और एक परिवहन विकास परिषद्[4] की स्थापना की है जिसका प्रयोजन राज्यों की इन विषयों से संबंधित नीति में समन्वय करना है। वस्तुतः अंतरराज्य परिषद् का प्राथमिक उद्देश्य समन्वय और परिसंघीय घनिष्ठता स्थापित करना है। इन छोटे-छोटे निकायों का सृजन करते समय जिनका उद्देश्य विनिर्दिष्ट विषयों पर कार्य करना है इस उद्देश्य को ओझल कर दिया गया है। इनका सृजन कानूनी निर्वचन के इस नियम पर किया गया है कि परिषद् का सृजन करने की शक्ति में एक से अधिक परिषदों का सृजन करना आता है।

सरकारिया आयोग ने एक स्थायी अंतरराज्य परिषद् के गठन की सिफारिश की थी जिसे अनुच्छेद 263 के खंड (ख) और (ग) में बताए गए कर्तव्य सौंपे जाएं । अप्रैल, 1990 में इस परिषद् की स्थापना की गई। इसमें संघ के 6 मंत्री और सभी राज्यों के मुख्य मंत्री हैं।[5]

अंतरराज्य वाणिज्य आयोग।

भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वाधीनता से संबंधित संविधान के उपबंधों को प्रवृत्त करने के प्रयोजन के लिए [अनुच्छेद 301-305] संसद् को यह शक्ति दी गई है कि वह अमरीका के अंतरराज्य वाणिज्य आयोग के समान कोई प्राधिकरण गठित करे और उसे ऐसी शक्तियां और कर्तव्य सौंपे जो वह ठीक समझे [अनुच्छेद 307]। किंतु मार्च, 1997 तक ऐसे किसी आयोग की स्थापना नहीं की गई।

अखिल भारतीय समस्याओं को सुलझाने के लिए संविधानेतर अभिकरण।

राज्यों पर संघ के नियंत्रण के लिए ये सांविधानिक अभिकरण यह सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए हैं कि परिसंघीय शासन प्रणाली के होते हुए भी भारत का समन्वित विकास हो सके। इनके अतिरिक्त संघ के स्तर पर कुछ सलाहकार निकाय और सम्मेलन हैं जिनसे राज्य के स्तर पर नीतियों का समन्वय होता है और विभिन्न राज्यों के बीच मतभेदों को समाप्त किया जाता है। इन निकायों में सर्वप्रथम है योजना आयोग।

योजना आयोग।

संविधान में विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न आयोगों का उल्लेख है किंतु उसमें कहीं भी योजना आयोग का उल्लेख नहीं है। समवर्ती विधायी सूची में "आर्थिक और सामाजिक योजना" एक प्रविष्टि है (प्रविष्टि 20, सूची 3)। संघ की इस शक्ति का लाभ उठाकर संघ ने 1950 में बिना विधान बनाए एक योजना आयोग की स्थापना की। यह संविधानेतर और असांविधिक निकाय संघ के मंत्रिमंडल के एक संकल्प द्वारा (1950 में) बनाया गया। प्रधान मंत्री श्री नेहरू उसके पहले अध्यक्ष थे और इसका उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए एक समेकित पंचवर्षीय योजना बनाना[6] और इस निमित्त संघ की सरकार के लिए सलाहकारी निकाय के रूप में कार्य करना था।

इस निश्चित उद्देश्य से स्थापित इस आयोग के क्रियाकलाप में धीरे-धीरे प्रशासन के सभी क्षेत्र आ गए हैं केवल प्रतिरक्षा और विदेश कार्य ही बाहर रहे हैं। स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि एक आलोचक ने इसे "सम्पूर्ण देश का आर्थिक मंत्रिमंडल" कहा है जो प्रधान मंत्री द्वारा गठित किया जाता है तथा जिसके कृत्य वित्त आयोग जैसे सांविधानिक निकायों के कृत्यों का अतिलंघन करते हैं।[7] और फिर भी यह संसद् के प्रति उत्तरदायी नही हैं इसका एक विशाल नौकरशाही संगठन बन गया है।[8] पंडित नेहरू ने स्वयं यह कहा था[7]—

'आयोग जो गम्भीर चिंतकों का छोटा सा समूह था अब भारत सरकार का एक विभाग बन गया है जिसमें सचिवों और निदेशकों की भीड़ लगी हुई है और उसका अपना एक विशाल भवन भी है।"

इन आलोचकों की राय में, योजना आयोग ऐसा अभिकरण है जो परिसंघीय प्रणाली के अधीन राज्यों की स्वायत्तता पर प्रहार करता है। किसी निष्कर्ष पर आने से पहले हमें आयोग के प्रभाव की समुचित परीक्षा करनी चाहिए। आयोग का कार्य देश के संसाधनों के सर्वाधिक और संतुलित उपयोग के लिए योजना तैयार करना है जिससे विकास की ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी जो जीवनस्तर को ऊपर उठाएगी और लोगों को नए अवसर प्रदान करेगी। यह स्पष्ट है कि आयोग का काम केवल योजना बनाना है, इन योजनाओं को कार्यान्वित करना राज्यों के हाथ में है क्योंकि अधिकांश विकास राज्यों के विषयों के बारे में है। इसमें कोई संदेह नहीं कि संघ के स्तर पर योजना आयोग की बात का बहुत वज़न है क्योंकि उसका अध्यक्ष स्वयं प्रधान मंत्री है किंतु जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है आयोग की भूमिका सलाहकार की है। उसका जो भी प्रभाव है वह अप्रत्यक्ष है क्योंकि राज्य चाहते हैं कि उनकी आवश्यकताएं राष्ट्रीय योजना में सम्मिलित कर ली जाएं। ऐसा करने के पश्चात् योजना आयोग के पास कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं है जिससे वह योजना को क्रियान्वित करा सके। यदि राज्य इस प्रक्रम पर योजना आयोग द्वारा अधिकथित एकसी नीति का अनुसरण करते हैं तो वह इसलिए कि वे संघ से वित्तीय सहायता पाए बिना काम नहीं चला सकते।[9] सही अर्थ में वित्तीय सहायता का लाभ उठाना स्वैच्छिक है। इसमें प्रपीड़न नहीं है। अमरीका में भी परिसंघ के सहायता अनुदानों को परिसंघीय प्रणाली का विनाश करने वाला नहीं समझा जाता यद्यपि अनेक आलोचकों के अनुसार इससे राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप होता है।[10]

किंतु इस आलोचना का औचित्य जान पड़ता है कि दो उच्च शक्ति संपन्न निकायों के अर्थात् वित्त आयोग और योजना आयोग के स्थापित किए जाने में कार्य और उत्तरदायित्व की परस्पर व्याप्ति हो जाती है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी इस पर टिप्पणी की है।[11] वस्तुतः "योजना व्यय" और "गैर योजना व्यय" में कोई स्वाभाविक विभाजन नहीं है। यह विषमता इस कारण उत्पन्न हो गई है कि संविधान के निर्माताओं ने योजना आयोग जैसे निकाय के सृजन की कल्पना नहीं की थी। इसे बाद में कार्यपालिका के आदेश द्वारा स्थापित किया गया। चाहे जो भी हो इन दोनों आयोगों के बीच समन्वय की आवश्यकता स्वयंसिद्ध है। अन्तोगत्वा मंत्रिमंडल या राष्ट्रीय विकास परिषद् जैसे किसी निकाय को इस ओर ध्यान देना होगा। इन दोनों आयोगों को एकीकृत किया जाना चाहिए और इसके लिए संविधान के संशोधन की आवश्यकता होगी क्योंकि वित्त आयोग का उल्लेख संविधान में है।

राष्ट्रीय विकास परिषद्।

योजना आयोग के कार्यकरण से एक और संविधानेतर और विधि बाह्य निकाय की स्थापना करना पड़ी है वह है

राष्ट्रीय विकास परिषद्।

यह परिषद् 1952 में योजना आयोग के अनुषंग के रूप में बनाई गई थी जिससे राज्यों को योजनाओं के निर्माण में सहयुक्त किया जा सके। संघ के प्रधान मंत्री और राज्यों के मुख्य मंत्रियों से मिलकर बनी हुई इस परिषद् के उद्देश्य हैं "योजना के समर्थन में प्रयत्नों को गति देना और उन्हें मजबूत बनाना तथा संसाधनों का इस दृष्टि से उपयोग करना, सभी महत्व के क्षेत्रों में सामान्य आर्थिक नीतियों का प्रोन्नयन करना और देश के सभी भागों का संतुलित और त्वरित विकास सुनिश्चित करना"। इसके अन्य विशिष्ट उद्देश्य हैं,—

(क) समय-समय पर राष्ट्रीय योजना के कार्यकरण का पुनर्विलोकन,

(ख) राष्ट्रीय योजना में बताए गए लक्ष्य और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अध्युपायों की सिफारिश करना।

1967 के मध्य से संघ के मंत्रिमंडल के सभी सदस्य, राज्यों के मुख्य मंत्री, संघ राज्यक्षेत्रों के प्रशासक और योजना आयोग के सदस्य इस परिषद् के सदस्य हैं।[12]

योजना आयोग के अतिरिक्त बहुत से वार्षिक सम्मेलन हैं जो संघ के तत्वावधान में किए जाते हैं और जिनका उद्देश्य है राज्यों के क्षेत्र. में समन्वय और समेकन करना। विनिर्दिष्ट समस्याओं पर सम्मेलन करने के अतिरिक्त कुछ उच्चतम स्तर पर वार्षिक सम्मेलन किए जाते हैं जैसे राज्यपालों का सम्मेलन, मुख्य मंत्रियों का सम्मेलन, विधि मंत्रियों का सम्मेलन, मुख्य न्यायमूर्तियों का सम्मेलन, आदि। अंतरराज्य और संघ राज्य संबंधों की दृष्टि से इन सबका भी बहुत अधिक महत्व है। जैसा एपलबी[8] ने संप्रेक्षण किया था, ऐसी संविदाओं के माध्यम से संघ इस उपमहाद्वीप में जिसमें 25 स्वशासी राज्य हैं (अब 28), अपना वर्चस्व रख सकेगा, सांविधानिक प्रपीड़न द्वारा नहीं।

> *"कोई भी विशाल, महत्वपूर्ण और राष्ट्रीय सरकार, कहने के लिए तो अधीनस्थ किंतु वास्तविक रूप से दूसरे राजनीतिक नियंत्रण के अधीन सुभिन्न इकाइयों पर, राष्ट्र के लिए महत्व के राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रशासन के लिए उतनी आधारित नहीं है जितना कि भारत।*
>
> *नई दिल्ली में जिस शक्ति का प्रयोग किया जाता है यह अनिश्चित और अनिरंतर शक्ति है जिसके साथ प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है। इसमें प्रभाव अधिक है शक्ति कम। इसका तरीका है योजना बनाना, घोषणाएं करना, सम्मेलन करना—विकास के क्षेत्र में वास्तविक शक्ति विशिष्ट नेताओं की व्यक्तिगत शक्ति है। यह प्रधान दल की संविधानेतर प्रशासनेतर शक्ति है।"* [8]

राष्ट्रीय एकता परिषद्।

राष्ट्रीय एकता परिषद् भी एक संविधानेतर निकाय है जो 1986 में बनाई गई थी। इसका उद्देश्य अखिल भारतीय स्तर पर अल्पसंख्यकों के कल्याण के कार्य करना है। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने इसे 1990 में पुनरुज्जीवित किया। अब इसमें संघ के मंत्रियों और राज्य के मुख्य मंत्रियों के अतिरिक्त राष्ट्रीय और प्रादेशिक राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि, श्रमिकों, महिलाओं, पत्रकारों और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि भी हैं। इसकी पहली बैठक में विचारणीय विषय थे—

सांप्रदायिक सद्भाव, विघटनवादियों द्वारा हिंसा, पंजाब और कश्मीर की समस्या, रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद।

(आ) संघ और राज्य के बीच सहयोग

परिसंघीय नियंत्रण के अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे उपबंध हैं जिनसे अधिकारिता का अनावश्यक संघर्ष हुए बिना संघ और राज्यों की सरकारों के बीच कार्य सुचारु रूप से चलता है, ये हैं—

(i) कृत्यों का पारस्परिक प्रत्यायोजन,

(ii) पारस्परिक कराधान से उन्मुक्ति।

कृत्यों का पारस्परिक प्रत्यायोजन।

(क) जैसा हम पहले बता चुके हैं हमारे संविधान में विधायी शक्ति और कार्यपालिका शक्ति दोनों का ही लगभग एक ही प्रकार से संघ और राज्यों के बीच वितरण किया गया है [अनुच्छेद 73, 162]।

परिणामस्वरूप राज्य संघ के विषय की बाबत प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम नहीं है और संघ किसी राज्य के कृत्यों का प्रशासन नहीं कर सकता, जब तक कि उन्हें संविधान के किसी उपबन्ध के द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत न किया जाए। प्रशासनिक विषयों में इस प्रकार के कठोर विभाजन से कभी-कभी गतिरोध हो सकता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए संविधान ने कुछ उपबन्ध बनाए हैं जिनसे संघ और राज्यों को अपने-अपने प्रशासनिक कृत्यों का पारस्परिक प्रत्यायोजन करने की शक्ति दी गई है :

(ख) संघ के कृत्यों के प्रत्यायोजन के बारे में दो ढंग हैं :

(i) राष्ट्रपति, राज्य सरकार की सहमति से, बिना विधायी मंजूरी के, कोई भी कार्यपालिका कृत्य किसी राज्य को सौंप सकता है [अनुच्छेद 258(1)]।

(ii) संसद् संबद्ध राज्य की सहमति के बिना, संघ के किसी विषय के बारे में विधान बनाते समय ऐसे विषय के संबंध में राज्य या उसके अधिकारियों को शक्ति प्रदान कर सकती है [अनुच्छेद 258(2)]। संक्षेप में, ऐसे प्रत्यायोजन का कानूनी आधार होगा।

(ग) इसके विपरीत किसी राज्य का राज्यपाल भारत सरकार की सहमति से राज्य के किसी विषय के संबंध में, उस राज्य की सीमा के भीतर कोई कृत्य संघ सरकार या उसके अधिकारियों को सौंप सकता है [अनुच्छेद 258क]।

(इ) *पारस्परिक कराधान से उन्मुक्ति।*

परिसंघ प्रणाली के उचित कार्यकरण के लिए पारस्परिक उन्मुक्ति की आवश्यकता।

परिसंघ संविधान दो सरकारों वाली प्रणाली को स्थापित करता है पर उसको सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि एक सरकार की सम्पति को दूसरी सरकार के कराधान से उन्मुक्ति हो। परिसंघ संविधानों में इस बात पर कुछ मतभेद है कि यह उन्मुक्ति कितनी दी जाए। किंतु इस सिद्धांत पर सहमति है कि कराधान से पारस्परिक उन्मुक्ति के कारण दोनों सरकारों के बीच (संघ और राज्य) करों के निर्धारण, परिकलन और लेखा रखने में बहुत सा व्यर्थ का श्रम बच जाएगा। हमारे संविधान में यह अनुच्छेद 285 और 289 का विषय है। ये अनुच्छेद क्रमशः संघ और राज्य की उन्मुक्ति के संबंध में हैं।

संघ की संपत्ति को राज्य के करों से छूट।

वहां तक के सिवाय जहां तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबंध करे, किसी राज्य द्वारा या राज्य के भीतर किसी प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित सभी करों से संघ की सम्पत्ति को छूट होगी [अनुच्छेद 285(1)]।

राज्य की सम्पत्ति और आय को संघ के करों से छूट।

इसी प्रकार राज्य की संपत्ति को संघ के कराधान से छूट है [अनुच्छेद 289(1)] किंतु यह उन्मुक्ति जैसा कि हमारे उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है संघ के सभी करों से नहीं है।[13] यह ऐसे करों तक सीमित है जो सम्पति पर उद्गृहीत किए हैं। राज्य को

सीमा-शुल्क से छूट नहीं है क्योंकि यह संपत्ति पर अधिरोपित नहीं किया जाता है। माल के आयात या निर्यात पर होता है।

राज्य की संपत्ति ही नहीं उसकी आय को भी संघ के कराधान से छूट है। यह छूट राज्य सरकार तक सीमित है। राज्य के भीतर स्थानीय प्राधिकारी को यह छूट नहीं है। राज्य की आय की यह छूट किसी वाणिज्यिक क्रियाकलाप से उद्भूत होने वाली आय के बारे में नहीं है। ऐसी आय संघ की अध्यारोही शक्ति के अधीन होगी। जैसे,—

(क) सामान्यतया, वाणिज्यिक क्रियाकलाप से राज्य को होने वाली आय को संघ द्वारा उद्गृहीत आय-कर से छूट होगी,

(ख) संसद् वाणिज्यिक कार्यकलाप से राज्य को होने वाली आय पर कर लगा सकती है।

(ग) यदि संसद् किसी प्रकटतः व्यापारिक कृत्य को सरकार के सामान्य कृत्य का अनुषंगी कृत्य घोषित करती है तो ऐसे कृत्य से होने वाली आय जब तक यह घोषणा बनी रहती है तब तक कराधेय नहीं होगी।[14]

निर्देश

1. 1961 तक कोई अतिरिक्त अखिल भारतीय सेवा नहीं बनाई गई थी किंतु उसके बाद हाल में बहुत सी नई अखिल भारतीय सेवाएं बनाई गई हैं (देखिए अध्याय 30, पाद टिप्पण 21)।
2. एस.आर.ओ. 1418, तारीख 9-8-1952; *इंडिया* 1959, पृष्ठ 146।
3. *इंडिया* 1957, पृष्ठ 398।
4. *इंडिया* 1979, पृष्ठ 352। भारतीय चिकित्सा परिषद्, केन्द्रीय परिवार कल्याण परिषद् (*इंडिया* 1982, पृष्ठ 101, 108)।
5. प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट (1969), जिल्द 1, पृष्ठ 32-34; अंतरराज्य संबंध पर सरकारिया आयोग का प्रतिवेदन, भाग 1, पैरा 9.3.05-06।
6. वर्तमान योजना नंवी पंचवर्षीय योजना है (1997 से 2002)।
7. चंद्र *फैडरेशन इन इंडिया,* पृष्ठ 275 और आगे।
8. एपलबी, *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया,* पृष्ठ 22।
9. दूसरी पंचवर्षीय योजना में राजस्व व्यय का 70 प्रतिशत और राज्य योजना में लगभग सभी पूंजी व्यय का वित्तपोषण संघ के अनुदान से किया गया था (संविधान के अनुच्छेद 275 के अधीन)। इसे सुमेलित अनुदान कहा जाता है।
10. देखिए डा. बसु की *कमेंट्री आन दि कांस्टिट्यूशन आफ इंडिया,* पांचवा संस्करण, जिल्द 4, पृष्ठ 304; *स्टीवर्ड मशीन कं.* बनाम *डेविस,* (1937) 301 यू.एस. 548।
11. प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट, जिल्द 1, पृष्ठ 16-19, 26-39।
12. *स्टेट्समैन,* 18-7-1967, पृष्ठ 1।
13. *सागर सीमा-शुल्क अधिनियम का मामला,* ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1760।
14. *ए.पी.एस.आर.टी.सी.* बनाम *आई.टी.ओ.,* ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1486 (*1491, 1493*)।